ISSN: 2456–4397 RNI No.UPBIL/2016/68067 Vol-6* Issue-3* June- 2021
Anthology : The Research

पूर्वमध्यकाल में नारी की स्थिति (सन् 700 ई० से 1200 ई० तक)

Status of women During the Early MedievalPeriod (From 700 AD to 1200 AD)

Paper Submission: 02/06/2021, Date of Acceptance: 15/06/2021, Date of Publication: 25/06/2021

अरविन्द कुमार चौधरी
पूर्व शोध छात्र
प्राचीन इतिहास,
डॉ0 राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय,
अयोध्या, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश

पूर्वमध्य काल में परिवारों में पितृसत्तात्मक स्थिति सुदृढ़ बनी हुई थी। स्त्रियों के अधिकारों में तेजी से कमी आती जा रही थी और स्त्रियों की स्थिति घरो के चाहरदिवारी में घिरती जा रही थी। उनकी शिक्षण व्यवस्था दयनीय हो गयी थी। कतिपय उच्च घरों की स्त्रियों या राजवंशों की स्त्रियों को ही शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त होता था। बालविवाह, सती प्रथा, बहु–विवाह आदि कुप्रथाएं प्रचलित हो गयी थी। स्त्रियाँ सम्पत्ति से भी वंचित हो गयी थी विधवाओं का जीवन अभिशाप बन चुका था और वे नाना प्रकार की सामाजिक अवमाननाओं से प्रताड़ित होती थी।

In the pre-medieval period, the patriarchal position in the families remained strong. The rights of women were decreasing rapidly and the status of women was getting surrounded within the boundaries of the houses. His education system had become pathetic. Only the women of certain high houses or dynasties had the right to receive education. Child marriage, Sati system, polygamy etc. had become prevalent. Women were also deprived of property, the life of widows had become a curse and they were harassed by various types of social contempt.

मुख्य शब्द : स्त्रियाँ, विधवा, अधिकार, सम्पत्ति, कुप्रथा, शिक्षा, पूर्वमध्य काल।
Women, Widows, Rights, Property, Customs, Education, Early Medieval Period.

प्रस्तावना

प्राचीन भारतीय में स्त्रियों का स्थान सम्मानजनक तथा आदर्शपरक था। स्त्री को पति की अर्द्धांगिनी कहा गया है।[1] मनुष्य जब तक भार्या की प्राप्ति नहीं कर लेता आधा रहता है।[2] मनु के अनुसार स्त्रियाँ सामाजिक–आर्थिक रूप से स्वतन्त्र नहीं है। सभी मामलों में आश्रित एवं परतंत्र है, बचपन में, विवाहोपरान्त एवं बुढ़ापे में क्रमशः पिता, पति एवं पुत्र द्वारा रक्षित होती है।[3] स्त्री का प्रथम कर्तव्य है पति सेवा अन्य कार्य व्रत, उपवास नियम आदि वह बिना पति की आज्ञा से नहीं कर सकती है।[4] स्त्रियों के विभिन्न रूपों में अधीत काल में परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है।

अध्ययन का उद्देश्य

स्त्रियों की समाज में महत्वपूर्ण भूमिका है। स्त्रियों की शिक्षा, आर्थिक स्थिति तथा सामाजिक राजनीतिक क्षेत्रों में भूमिकाओं को बढ़ाकर उनकी स्थिति में गुणात्मक सुधार किया जा सकता है। सती प्रथा बाल विवाह तथा विधवाओं पर अनेक प्रतिबन्ध समाज के लिए अहितकर था। इन कुप्रथाओं को आधुनिक सन्दर्भ में स्त्री की सुरक्षा समृद्धि तथा सम्पन्ता में वृद्धि करके दूर किया जा सकता है।

पुत्री के रूप में

पूर्वमध्य काल के अभिलेखों में पुत्री का उल्लेख गौरवमयी ढंग से हुआ। पृथ्वीदेव द्वितीय के कोणी प्रस्तर अभिलेख वर्ष 900 में देव–गुण पुत्र जयसिंह साध्वी पुत्री भोपा का उल्लेख हुआ है जिसे गंगा के समान पवित्र कहा गया है[5] जसराव देव के नोरिया मूर्ति अभिलेख वर्ष 910 में माता के नाम के साथ पुत्री का नाम भी उत्कीर्ण प्राप्त होता है।[6] गोपालदेव के मूर्ति अभिलेख में लक्ष्मण देव राजा के साथ उनकी सिंधुराणी तथा पांच पुत्रियों सुधा, गता, पदमा, शीला एवं दाता का उल्लेख मिलता है।

इन अभिलेखों में कन्याओं या पुत्रियों का उल्लेख राजमहल में उनकी अच्छी स्थिति होने की ओर स्पष्ट संकेत है। ये इतनी महत्वपूर्ण थी कि अभिलेखों में भी इनके नाम का उल्लेख किया गया है।

सामान्य जीवन में कन्याओं का स्थान इतना गौरवपूर्ण न रहा होगा। धर्मशास्त्रों में कृषि कर्मकार के रूप में प्रायः शूद्र वर्ण का उल्लेख मिलता है[7] पाराशर स्मृति के भाष्यकार माधवाचार्य ने ब्राह्मणों के लिए शूद्रों द्वारा खेती कराने का उल्लेख किया है। काश्यपीय कृषि सूक्ति में कहा गया है कि केवल शूद्रों को ही कृषि में भृत्य के रूप में नियोजित करना चाहिए अन्य जाति के लोगों को नहीं।[8]

इससे स्पष्ट होता है कि पूर्व मध्यकाल में एक बड़ा वर्ग कृषि मजदूर के रूप में कार्य करता था। सम्भवतः कृषि कार्य में उनका पूरा परिवार कार्य करता रहा होगा। जिसमें स्त्री पुरुष सभी सम्मिलित रहते होगे। इस वर्ग में कन्याओं को कठिन जीवन व्यतीत करना पड़ता रहा होगा।

पत्नी के रूप में

पूर्वमध्य काल में समाज में पत्नी के रूप में स्त्रियों की भूमिका तथा स्थान में धीरे–धीरे गिरावट दिखाई देती है। मेधातिथि, मनु तथा मत्स्य पुराण के समान पत्नी को अपराध करने पर दण्डित करने के पक्ष में था।[9]

पत्नी के भरण पोषण का उत्तरदायित्व पति पर था।[10] पर पुरुष गमन करने पर यदि पत्नी को छोड़ना पड़े तब उसके निर्वाह के लिए आवश्यक धन पति को देना चाहिए[11] यदि कोई पति किसी पतिव्रता पत्नी को अकारण त्याग देता है तो राजा द्वारा दण्डित करने योग्य है।[12] पत्नी को वस्त्र आभूषण देकर प्रसन्न रखना चाहिए तथा गृह कार्य में व्यस्त रखना चाहिए जिससे वह किसी दूसरे पुरुष का ध्यान न कर सके।[13] राजतंरगिणी में अनेक स्थलो पर उल्लेख मिलता है कि पत्नियाँ राजनीतिक कार्यो में भाग लेती थी।[14]

कलचुरि अभिलेखों में धर्म परायण तथा पतिव्रता पत्नियों का उल्लेख मिलता है। पृथ्वीदेव द्वितीय के कोणी प्रस्तर अभिलेख वर्ष 900 में प्रधानमंत्री सोढ़देव के पुत्र निम्न देव की पत्नी लखमा को रति और अरून्धती के समान काम व धर्म में रुचि रखने वाली कहा गया है।[15]

राजकीय अभिलेखों में स्त्री का पत्नी के रूप में जो उल्लेख मिलता है वह सम्मानजनक है। राजाओं की पत्नी रानी के रूप में अपने अधिकारों का उपयोग करती थी। राजा को परामर्श देती थी राजकीय कार्यो में पत्नियाँ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग करती थी। राजपरिवार में सामन्ती परिवेश में तथा बहुपत्नियों की उपस्थिति में सभी की स्थिति अच्छी तथा समान न रही होगी।

धर्मशास्त्रों में पत्नी के कर्तव्य के रूप में पति सेवा तथा पतिव्रता को अत्यधिक महत्व दिया गया है। स्मृति चन्द्रिका में सयमित तथा सदा जीवन का निर्देश पत्नी के लिए किया गया है[16] भागवत पुराण तथा ब्रह्मवैवर्त पुराण में पति सेवा को ही पत्नी का प्रमुख कर्तव्य बताया गया है।[17]

इस प्रकार भोजप्रबन्ध तथा कथासरित्सागर में भी अनेक शीलवती सच्चरित तथा पतिव्रता पत्नी का उदाहरण प्राप्त होता है[18] साहित्यिक स्रोतों में प्राप्त पत्नी सम्बन्धी सन्दर्भ से ज्ञात होता है कि पतिपरायण, सच्चरित्र, धार्मिक पत्नी का समाज में सम्मानजनक स्थान था।

पत्नी यदि व्यभिचारिणी होती थी, परपुरुष गमन करती थी तो उसके लिए प्रायश्चित का विधान प्राचीन धर्मशास्त्रों ने किया था। पत्नी द्वारा निरन्तर बार–बार व्यभिचार करने पर उसे त्यागने का प्राविधान किया गया था।[19] अलबेरूनी कहता है कि व्याभिचारिणी पत्नी के लिए पति के घर में कोई स्थान नहीं था। उसे त्याग दिया जाता था।[20] सम्भव है कि उच्च जातियों में व्यभिचार के प्रति अधिक कठोरता रही हो। सामान्य लोग प्रायश्चित आदि तथा सामान्य दण्ड जैसे जुर्माना आदि के द्वारा पत्नी को पुनः स्वीकार कर लेते रहे होगें।

माता के रूप में

अत्रि के अनुसार माता से बढ़कर कोई गुरू नही है।[21] माता के रूप में नारी का स्थान विशेष आदरणीय एवं गौरवयुक्त था[22] प्रभाकर वर्मन की पत्नी यशोमति चितारोहण के समय अपनी माता को स्मरण करती है।[23] पृथ्वीदेव द्वितीय के रायपुर संग्रहालय के शिलाभिलेख में रानी लाच्छल्ल देवी का बल्लभराज के प्रति स्नेह, यशोदा का कृष्ण तथा पार्वती का गुह (कार्तिकेय) के समान बताया गया है।[24] यह माता के रूप में स्त्री का राजकीय कार्यो में प्रभावी हस्तक्षेप का तथा मातृभक्ति का महत्वपूर्ण साक्ष्य है।[25]

विजय सिंह के वर्ष 932 के कुम्भी पत्र अभिलेख में उसके माता गोसल देवी के अमृतमय दृष्टि तथा मधुरवाणी और सुखद सानिध्य का उल्लेख मिलता है।[26] वर्ष 907 के नरसिंह के भेड़ाघाट शिलालेख में उसकी माता अल्हड़ देवी द्वारा कई मन्दिर बनवाने तथा ग्राम दान का वर्णन है।[27] अधीतकाल में माता के रूप में स्त्री का स्थान उच्च था।

विधवा के रूप में

ऋग्वेद में विधवा शब्द का प्रयोग अनेक बार हुआ है।[28] बौधायन धर्मसूत्र में उल्लेख मिलता है कि विधवा को एक वर्ष तक मधु, मांस, मदिरा तथा नमक का सेवन नही करना चाहिए तथा भूमिशयन करना चाहिए।[29]

हर्षचरित में उल्लेख मिलता है कि विधवाएँ आँख में अंजन, मुख पर पीला लेप नही करती थी। अपने बालों को ऐसे ही बाध लेती थी।[30] विधवा को अमंगल सूचक माना जाता था। विधवा का आशीर्वाद कोई विज्ञजन ग्रहण नही करता मानो वह सर्प विष हो।[31] विधवा के कबरीबंध (केश बंध) से पति बन्धन में पड़ता है। अतः विधवा को अपना सिर मुण्डित रखना चाहिए। एक बार भोजन, मांस भर, उपवास तथा चंद्रायण व्रत रखना चाहिए। विधवा का पर्यक शयन पति को नरकगामी बनाता है। उसे सुगन्धित लेप से दूर रहना चाहिए।[32]

निरूक्त में विधवानाद व इति चर्मशिरा में चर्मशिरा को मुण्डित विधवा का द्योतक मानते है। इसी प्रकार आपस्तम्बमंत्र पाठ में विकेशी शब्द का अर्थ मुण्डित विधवा किया गया है।[33]

पी०वी० काणे उपर्युक्त अर्थ को युक्ति संगत नही मानते उनके अनुसार विधवा का मुण्डन शास्त्र संगत नही है।[34] पी०वी० काणे के अनुसार मुण्डन की प्रथा 10वीं एवं 11वीं शताब्दी से आरम्भ हुई। कालान्तर में विधवाएँ यतियों के समान मानी जाने लगी। यति लोग अपना सिर मुड़ाया करते थे। अतः विधवाएँ भी वैसा करने लगी। चुल्लवर्ग से ज्ञात होता है कि बौध साधुनिया (भिच्छुणियां) सिर से केश कटा डालती थी और नारंगी रंग की (विच्छिल) परिधान धारण करती थीं। डस प्रथा से मुण्डल की प्रथा को बल मिला होगा।[35]

विधवा का सांसारिक जीवन में रहना सम्भव न होने के कारण साधु के समान त्यागमय जीवन का विधान किया गया होगा। यदि वे श्रृंगार का प्रयोग करती, आकर्षक दिखाई देती, तो अनेक अनैतिक प्रश्न उपस्थित होने की आंशका थी। अमंगल घोषित करने से विधवा से एक प्रकार की दूरी बनी रहती थी।

अधीत काल में सती प्रथा के जोर पकड़ने के पीछे समाज में विधवा की स्थिति में गिरावट थी। धर्मशास्त्रों में थी सती प्रथा के विषय में उल्लेख इसके सामाजिक मान्यता तथा स्वीकृति का कुछ संकेत है। सती प्रथा को समाज में सामान्य रूप से प्रचलित नहीं माना जा सकता है।

स्त्री के अधिकार

नारद कात्यायान तथा बृहस्पति पुत्र के अभाव में पुत्री को दायाद मानते है।[36] याज्ञवल्क्य तथा विष्णु ने पुत्र न होने पर विधवा को सम्पत्ति का अधिकारी माना है।[37] लक्ष्मीधर तथा जीमूतवाहन ने भी निःसन्तान विधवा को अपने पति की सम्पत्ति पाने का समर्थन किया है।[38] विधवा के सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार में वृद्धि के संकेत अन्य समकालीन साक्ष्यों से मिलते है। अल्बेरूनी के अनुसार यदि मृत व्यक्ति का कोई उत्तराधिकारी होता था तो उसे विधवा को भोजन वस्त्र देना पड़ता था।[39] लेख पद्धति ने सम्पत्ति में विधवा के एक भाग का समर्थन किया है।[40] गुप्तोत्तर काल में स्त्रियों के सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकारों में कुछ वृद्धि के संकेत प्राप्त होते है।

विवाह के समय कन्या को दिये जाने वाले उपहार, वस्त्र, आभूषण तथा अन्य सामग्री (पारिणाह्य) को स्त्री धन कहा जाता था।[41] सातवीं शताब्दी से स्त्री धन का क्षेत्र अधिक विस्तृत हुआ। स्त्री धन पर पुत्रियों का अधिकार होता था। विवाहित पुत्रियों की अपेक्षा अविवाहित पुत्रियों का हक अधिक होता था[42] कन्याओं के अभाव में स्त्री धन पर पुत्रों का अधिकार माना गया है। स्त्री धन में धीरे–धीरे चल सम्पत्ति के साथ–साथ अचल सम्पत्ति भी जुड़ने लगी। स्त्री धन के व्यापक होने के साथ पुत्रों के अधिकारों को मान्यता मिलने लगी। विवेच्य काल में विज्ञानेश्वर और जीमूतवाहन ने भी स्त्री धन में कन्या के साथ पुत्रों के अधिकार को समर्थन दिया है।[43]

विवेच्य काल में भूमि दान की बढ़ती प्रवृत्ति से भी स्त्री धन में अचल सम्पत्ति सम्मिलित हुई होगी। दहेज के रुप में भी स्त्री धन के रुप में अचल सम्पत्ति प्राप्ति हुई होगी, सम्भवतः अचल सम्पत्ति को सभालने के लिए पुत्रों को भी स्त्री धन पर अधिकार दिया गया होगा।

विवेच्च काल में कन्याओं की उच्च शिक्षा धनी परिवारों तक सीमित थी। मेधातिथि के अनुसार उसके समय में महिलाएं संस्कृत नहीं जानती थी।[44] राजशेखर के अनुसार अभिजात कुल की कन्याएं, वेश्याएं, संस्कृत काव्य और शास्त्र जानती थी। राजशेखर की पत्नी अवन्ति सुन्दरी कवयित्री और टीकाकार थी। रुसा ने आयुर्वेद पर रचना किया था।[45] उपमिति भवप्रपंच कथा में अनेक राजकुमारियों के चित्र; कला और संगीत में निपुण होने का साक्ष्य मिलता है।[46]

ग्रामीण तथा शहरी स्त्रियों के मध्य शिक्षा के अवसर की दृष्टि से अन्तर था। विल्हण के अनुसार शहरी क्षेत्रों में संस्कृति के अच्छे स्तर तथा स्वतन्त्र वातावरण के कारण स्त्रियों के शिक्षा के लिए अधिक अवसर था। ग्रामीण क्षेत्र में कन्याओं का विवाह 8 से 10 वर्ष की अवस्था में होने लगा जिसके कारण ग्रामीण स्त्रियों के पास शिक्षा के अधिक अवसर नही थे। इसके फलस्वरुप उनकी शिक्षा में अधिक शिथिलता आ गयी। राजतंरगरिणी में उच्च वर्ग की स्त्रियों द्वारा धार्मिक ग्रान्थों व साहित्य के अतिरिक्त नृत्य, संगीत, चित्रकला की शिक्षा प्राप्ति का उल्लेख है[47]।

गुप्तोत्तर काल में कृषि व्यवस्था के विकास तथा विस्तार ने कृषि कार्य तथा उससे सम्बन्धित व्यवसाय में स्त्रियों के नियोजित होने का अवसर दिया। अभिलेखों ने कर्षक, क्षेत्रकर, कुटुम्त्री, आर्धिक, हालिक आदि शब्द मिलते है[48] राजमहलों में नियुक्त होने वाली महिलाएं चवर झलने, पान लेने देने, पहरेदारी, नाचने गाने राजरानियों की दूती तथा उनके श्रृंगार का कार्य करने में प्रवीण होती थी।[49] कल्हर ने उल्लेख किया है कि स्त्रियाँ धर में रहकर विभिन्न धरेलू तथा पारिवारिक कार्य करती थी।[50] स्त्रियाँ सूत कातकर, कपड़े बुनकर, या अन्य व्यावसायिक कलाओं द्वारा धन कमाकर अपने पतियों की मद्द करती थी।[51]

रानी दिद्दा ने राजा क्षेम गुप्त के साथ पुत्र अभिमन्यु की संरक्षिका तथा स्वतन्त्र शासक के रुप में शासन किया था। राजा अनन्त देव की पत्नी रानी सूर्यमती अत्यधिक प्रभावशाली महिला थी। उसके पति उसके निर्देश के अनुसार राजकार्य करते थे। मत्रियों के विरोध करने पर भी अनन्त देव में सूर्यमती के निर्देश के अनुसार अपने पुत्र कलश को सत्ता सौप दी थी।[52]

कल्हण के अनुसार सामन्तों की पत्नियाँ तथा सामान्य स्त्रियाँ भी राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थी।[53] हुड्डा तथा शिल्ला नामक स्त्रियों ने कश्मीर में सेना प्रमुख का पद प्राप्त किया था।

गुप्तोत्तर काल में स्त्रियाँ शिक्षा विभिन्न कलाओं, कृषि, कार्य, धरेलू कार्य, राजनीति, सेना आदि से सम्बन्धित व्यवसायो को करती थी।

अल्टेकर के अनुसार 300 ईसवी के बाद से स्त्रियों में पर्दा करने की प्रथा राजवंशों में शुरु हुई। ये स्त्रियाँ जन साधारण के बीच में आते समय अपने मुख मण्डल को ढ़क लेती थी। जहाँ मुस्लिम सत्ता स्थापित हुई थी वहाँ पर यह प्रथा अधिक प्रचलित थी। दक्षिण भारत में जहाँ मुस्लिम सत्ता संस्कृति का प्रभाव कम था, पर्दा प्रथा कम थी।[54] विल्हण के अनुसार भारतीय समाज में पर्दा प्रथा सामान्य रुप से प्रचलित थी[55] राजतरंगिणी में

महिलाओं के खुले रुप में सार्वजनिक समारोहों में भाग लेने का साक्ष्य मिलता है।[56] विवेच्य काल में स्त्रियों में पर्दा प्रथा का विकास हो गया था।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः विवेच्य काल में परिवारों में पितृसत्तात्मक स्थिति सुदृढ़ बनी हुई थी। स्त्रियों के अधिकारों में तेजी से कमी आती जा रही थी और स्त्रियों की स्थिति घरो के चाहरदिवारी में घिरती जा रही थी। उनकी शिक्षण व्यवस्था दयनीय हो गयी थी। कतिपय उच्च घरों की स्त्रियों या राजवंशों की स्त्रियों को ही शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त होता था। बालविवाह, सती प्रथा, बहु–विवाह आदि कुप्रथाएं प्रचलित हो गयी थी। स्त्रियाँ सम्पत्ति से भी वंचित हो गयी थी विधवाओं का जीवन अभिशाप बन चुका था और वे नाना प्रकार की सामाजिक अवमाननाओं से प्रताड़ित होती थी। कतिपय अभिलेखों में राजाओं के साथ माता के नाम का भी उल्लेख मिलता है। कलहण की राजतरंगिणी तथा पृथ्वी राजविजय में स्त्रियों के शिक्षित होने तथा प्रशासनिक कार्यों में भाग लेने का साक्ष्य मिलता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *शतपथ ब्राह्मण, 5/2/1/10*
2. *वेद व्यास स्मृति 2/14 यावन्त विन्दते जाया ताव दर्द्धो भवेत पुमान।*
3. *मनुस्मृति, 9/2–3*
4. *हेमाद्रि व्रत खण्ड, पृ०–362*
5. *कार्पस डन्सिक्रप्शन इण्डिकेरम, भाग–4, क्र. 93 श्लोक 21, पृ० 487*
6. *वही, भाग–4, क्रमांक 111–12, पृ०–586*
7. *मनुस्मृति 4, 256 पर मेधातिथि*
8. *पाराशरस्मृति 2–2 पर माधवाचार्य*
9. *मनुस्मृति 8.2.99*
10. *मेधातिथि 1/224; 2/75*
11. *स्मृति चन्द्रिका 568–70, 575–75*
12. *वही, 575–76*
13. *मेधातिथि टीका मनुस्मृति 9/76*
14. *राजतरंगिणी 8/1968–1970, 8/1136–37*
15. *कार्पस इन्स्क्रिप्शनम इंडिमेटम भाग–4, क्रमांक 90, पृ० 468*
16. *स्मृति चन्द्रिका, पृ०–253*
17. *ब्रह्मवैवर्तपुराण, 35/119, 127*
18. *भोज प्रबन्ध श्लोक, 292*
19. *मिताक्षरा याज्ञवल्क्य 1/72, वशिष्ठ 2/10–12*
20. *अल्बेरुनीज इण्डिया, 2 पृ० 162*
21. *अत्रि स्मृति पृष्ठ, 151 नास्तिमातुह परोगुरुः*
22. *पी.वी. काणे धर्मशास्त्र का इतिहास भाग दो, पृ० 580–81*
23. *हर्ष चरित 5वां उच्छवास*
24. *कार्पस इस्क्रिप्सनस इण्डिकेरम, भाग–1, क्रमांक 85, पृ० 440*
25. *वही, 77 पृ०–413*
26. *वही, परिशिष्ट 4, पृ० 649*
27. *वही, क्रमांक 60, पृ० 317*
28. *ऋग्वेद 4/18/12, 10/18/7, 10/40/2 तथा 8*
29. *बौधायन धर्म सूत्र 2/2/66–68*
30. *हर्ष चरित 6 अन्तिम अंश*
31. *स्कन्दपुराण काशी खण्ड 4/55/75*
32. *स्कन्दपुराण काशी खण्ड अध्याय 4*
33. *निरुक्त 3/15 आपस्तम्बमंत्रपाठ, 1/5/9*
34. *धर्मशास्त्र का इतिहास भाग एक पृ० 332–333*
35. *पी.वी. काणे धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग–1, पृ०–321*
36. *नारदस्मृति 13/50 कात्यायन मिताक्षरा 2/163*
37. *याज्ञवल्क्य स्मृति 1/135, 136 विष्णु स्मृति 17/43*
38. *कृत्यकल्पतरु दायाभाग, खण्ड–11, हिस्ट्री ऑव बंगाल, भाग–1, पृ०–610*
39. *सखाऊ अलबरुनीज इण्डिया, भाग–2, पृ०–146*
40. *लेख पद्धति, पृ० 47–49*
41. *ऋग्वेद 10/85/13 अथर्ववेद, 14/1/13*
42. *विज्ञानेश्वर टीका याज्ञवल्क्य टीका 2/145*
43. *दायभाग, 79, 82 मिताक्षरा 2/117*
44. *मेधातिथि टीका मनुस्मृति, 2/159*
45. *नदवीकृत अरब और भारत के सम्बन्ध, पृ०–122*
46. *उपमिति भव प्रपन्चकथा, पृ० 345, 453–59, 875–92*
47. *वी०एन०एस० सोसायटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इण्डिया, इलाहाबाद 1973, पृ०–71*
48. *वी०एन०एस० यादव इण्डियन हिस्टारिकल रिव्यू जिल्द–3, न.–1 पृ०–47 फोगेल एफ्टीक्वीटीज ऑव चम्बा स्टेट, पृ०–167*
49. *वी०एन० लुनिया प्राचीन भारतीय संस्कृति लक्ष्मी नारायण अग्रवाल आगरा, 3,1970, पृ०–760*
50. *राजतंरगिणी VII 2001 IV 270–271, 381*
51. *एपीग्रैफिया इण्डिका XVIII पृ० 109 V 22*
52. *राजतंरगिणी VI , 188, 229, 332, 315, 362, 316, VII, 119, 229–231*
53. *वही, VIII 1968–70, 1820–23*
54. *ए.एस. अल्तेकर पोजीशन ऑफ वीमन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, बनारस, 1956, पृ०–173*
55. *विक्रमांक देव चरित, पृ० 149*
56. *राजतरंगिणी V 357–358 VIII 3303*